Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

संस्कृत वाङ्मय के आलोक में सौन्दर्य के आस्वाद में निहित आनन्दानुभूति

डॉ0 ज्योति कपूर
एसोसियेट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
सदनलाल सॉवलदास, खन्ना महिला, महाविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।

Article Info
Volume 4, Issue 5
Page Number : 55-59
Publication Issue :
September-October-2021
Article History
Accepted : 01 Sep 2021
Published : 09 Sep 2021

शोधसारांश– संस्कृत काव्यशास्त्र के सभी सम्प्रदाय अपनी गरिमा और महनीयता को स्थापित करते हुए उसे ही काव्यात्मतत्त्व के रुप में प्रस्तुत करते हैं। उनका उद्देश्य काव्य–सौन्दर्य के समस्त उपादानों का अन्वेषण रहा है। सौन्दर्य के आस्वाद में निहित आनन्दानुभूति के संदर्भ में यह कहना युक्तियुक्त ही है कि जिनके पास दृष्टि है, अर्थात जो सहृदय प्राणी है, वही सौन्दर्य को कसौटी पर परखने में सक्षम है। इतरेतर सामान्य प्राणी नहीं। इस प्रकार सौन्दर्य अनुभवैकगम्य है। वस्तुतः कला एवं साहित्य का उपनिषद सौन्दर्य है। इसी से कला और साहित्य दोनों सरस और सार्थक होते हैं।

मुख्य शब्द– संस्कृत, वाङ्मय, सौन्दर्य, आस्वाद।

भारतीय संस्कृति विविधरूपिणी एवं बहुमुखी रही है। मानव के कार्यक्षेत्र में, युद्ध एवं शान्ति की प्रत्येक कला में, राजनीति एवं शासन व्यवस्था में, संगीत तथा साहित्य में, स्थापत्य और प्रतिमा निर्माण में, नृत्य व चित्रकला में हमारी संस्कृति विकसित हुई हैं। प्रत्येक कला मानव के सौन्दर्य बोध की अभिव्यक्ति हैं। सौन्दर्य की अभिव्यक्ति कला द्वारा होती है। काव्य अथवा कला की भाषा केवल भावात्मक है, तथ्यात्मक नहीं। काव्य किसी तथ्य का निर्देशन नहीं करता अपितु वह केवल भाव का चित्रण, अनुमोदन एवं उद्दीपन करता है। टॉल्स्टॉय[1] के मत में कलाकृति और कला का आस्वादन दोनों ही भावात्मक भोग है। उनका मत यह है कि अपने अनुभूत भावों का आह्वान और दूसरे के प्रति उनका संचरण ही कला का उद्देश्य हैं।

संसार में अनेक कलाएं है। तीन प्रमुख ललित कलाएं मानी जाती है, मूर्तिकला, चित्रकला और काव्यकला। संस्कृत ग्रन्थों में अभिव्यक्त ललित कला की प्रधान विशेषताओं यथा लालित्य लावण्य, सौन्दर्यानुभूति, रमणीयता, चारूत्व, चर्वणा ध्वनि, व्य×जना प्रतीयमान एवं रसानुभूति से सम्बन्धित तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए सर्वेक्षण किया गया है। ''कला'' शब्द की संस्कृत के आचार्यों ने कई तरह से व्याख्या करने का प्रयास किया है। कुछ विद्वानों ने कं. (सुखम्) लाति इति कलम् कह कर कल और कला शब्दों का सान्निध्य बोध प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार कुछ आचार्य ''के आनन्दं लाति आदते या सा कला'' अर्थात जो आनन्द की अनुभूति कराये वह कला है ऐसी निष्पत्ति प्रतिपादित करते है।[2] कला में ललित एवं उपयोगी दोनों प्रकार के कौशल्य का सुन्दर समाहार भवभूति ने उत्तररामचरित[3] नाटक के प्रथम श्लोक में व्यक्त किया है।

कला को दो भागों में बाँटा जा सकता है। ललित कला और उपयोगी कला। काव्य एक ऐसी कला है जो ललित कला भी है और उपयोगी कला भी है। उपयोग की दृष्टि से काव्य धर्मार्थकाम आदि प्रयोज्य है। लालित्य के क्षेत्र में पण्डितराजजगन्नाथ के इस कथन को उद्धृत किया जा सकता है ''सा मामकीन कवितेव मनोभिरामा'' कला

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

का प्राण है– सौन्दर्य। कालिदास कुमारसंभव में चारुता अथवा सौन्दर्य की व्याख्या करते हुए कहते है – ''प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता''[4] अर्थात प्रिय की प्रियता को पीड़ित अथवा तृप्त करने वाला सौन्दर्य ही होता है। सौन्दर्य बुद्धि के द्वारा सत्य का एवं आचरण और क्रिया द्वारा शिवत्व का अनुभव करता है। इसलिये सुन्दर का उत्सव आनन्द माना गया है। सौन्दर्य बोध के तीन माने स्तर माने जा सकते है। प्रथम स्तर पर हम इन्द्रियों द्वारा सौन्दर्य का परिचय मात्र करते है यह गोचर सौन्दर्य है। द्वितीय किञ्चित उच्चतर स्तर अगोचर है जिसमें सौन्दर्य की आन्तरिक अनुभूति होती है सौन्दर्य–अनुभूति की सबसे उच्च स्थिति वह होती है जब चित्र सौन्दर्य में डूब जाता है यही पहुँच कर कला ब्रह्मानन्द सहोदर हो जाती है।

सौन्दर्यबोध की क्षमता मानव जीवन की अमूल्य निधि है। सौन्दर्यानुभूति का सीधा सम्बन्ध मानवीय संवेदनशीलता तथा उसकी प्रतिक्रियाओं से है, जिसे रसानुभूति या आनन्दानुभूति की संज्ञा दी जाती है। यह अनुभूति सहृदयसंवेद्य होती है। सहृदय की योग्यता सबमें नहीं होती है। अनुभूति की तीव्रता विशेष रुप से सहृदयों में ही होती है।

भारतीय सौन्दर्य–दर्शन का मूल आधार है काव्यशास्त्र। यद्यपि दर्शन में भी, विशेषकर आन्नदवादी आगम–ग्रन्थों में, आत्मतत्त्व के व्याख्यान के अन्तर्गत सौन्दर्य की अनुभूति के विषय में प्रचुर उल्लेख मिलते है, फिर भी सौन्दर्य के आस्वाद और स्वरुप का व्यवस्थित विवेचन काव्यशास्त्र में प्राप्त होता है। अलंकार, गुण, दोष रीति आदि के विद्यमान होने पर भी काव्यशास्त्र आत्मविहीन सा प्रतीत होता है, क्योंकि काव्य की पूर्णता रस में ही निहित है। काव्य का जीवनदायक तत्त्व रस है, एवं काव्य का सम्पूर्ण चारुत्व तो रस में ही निहित है। इस प्रकार सौन्दर्य के आस्वाद में निहित प्रीति–तत्त्व प्राधान्य रस–सिद्धान्त में प्रस्फुटित और विकसित हुआ।

रस भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम् शब्दों में से है। सामान्यतौर पर संस्कृत साहित्य में रस से आशय काव्य सौन्दर्य और काव्यास्वाद तथा काव्यानन्द से है। मोक्षरस या आत्मरस ब्रहमानन्द अथवा आत्मानन्द का वाचक है। साहित्यदपर्णकार विश्वनाथ कविराज ने काव्य और नाट्य दोनों का विवेचन करते हुए समस्त ललित वाङ्मय के क्षेत्र में रस का महत्त्व प्रतिपादित किया है। उनके मत से काव्य के लक्षण में केवल रस का उल्लेख यथेष्ट है। ''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्''[5] अन्य काव्यतत्त्व रस के आश्रित होने के कारण उसमें स्वतः ही अंतर्भूत रहते हैं।

काव्यशास्त्री काव्यशास्त्र को कई सम्प्रदायों से युक्त स्वीकार करते हैं, जिसमें रस सम्प्रदाय, अलंकार सम्प्रदाय, रीति सम्प्रदाय, औचित्य सम्प्रदाय एवं ध्वनिसम्प्रदाय। इसमें रस–सम्प्रदाय एवं ध्वनि–सम्प्रदाय में मात्र शब्दों का भेद है। यथार्थ वस्तु दोनों में एक ही है। काव्यशास्त्री रस–सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि को मानते हैं। भरत के रससूत्र को आधार बनाकर काव्यप्रकाशकार मम्मट, साहित्यदपर्णकार आचार्य विश्वनाथ, ध्वनिकार आनन्दवर्धन एवं रसगंगाधर आचार्य पण्डितराजजगन्नाथ ने अपने अपने ग्रन्थों में व्याख्या की हैं।

सौन्दर्य का लोकमंगलकारी रुप ही भारतीय काव्यालोचन का मूलाधार है अर्थात वह काव्य के सौन्दर्यवादी (कलावादी) मूल्य एवं लोककल्याणकारी मूल्य के बीच समन्वय की स्थापना करता है। कथ्य की भव्यता के साथ कथन की रम्यता या भंगिमा को ही काव्य का निकष स्वीकार किया जाता है। संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों ने सौन्दर्य या लालित्यतत्त्वं का आख्यान कर कथन की चारुता के प्रकर्ष की महत्ता को स्वीकार कर अभिव्यंजना की गरिमा को बनाने का अथक प्रयास किया जिसकी पूर्ण परिणति ध्वनि–सिद्धान्त के रुप में हुई। इस प्रकार सर्जना के सौन्दर्य का अन्वेषण कर विश्व काव्यालोचन और कलादर्शन के क्षेत्र में व्यंजना, प्रतीयमान या ध्वनि के रुप में नूतन क्रियाकल्प की अवतारणा की थी। आनन्द की अनुभूति कला अथवा काव्य से तभी होती है जब उसमें मनोग्राहिता होती है। काव्य के जिस अर्थ को आचार्यों ने काव्य का सारभूत कहा है।

उसके वाच्य और प्रतीयमान दो भेद बताये है।[6] वाच्य अर्थ तो सबको प्रतीत होता है, किन्तु प्रतीयमान अर्थ ही काव्यकला का अभिप्रेत है।

इस प्रकार ध्वनिकार आनन्दवर्धन के अनुसार सारभूत अर्थ प्रतीयमान ही होता है। और उसका सौन्दर्य साधारण कवियों की रचनाओं में न होकर केवल महाकवियों की ही वाणी में सम्भव है।[7] वस्तुतः वाच्यार्थ में उतना सौन्दर्य नहीं होता जितना कि प्रतीयमान या व्यंग्यार्थ में। जिस प्रकार रमणी के अवयवों से अतिरिक्त प्रस्फुटित होने वाले लावण्य का महत्त्व होता है, उसी प्रकार काव्य में प्रतीयमान का। वह रमणी के शरीर में स्थित लावण्य की भॉति अन्तः सौन्दर्य का परिचायक है। इसी प्रकार ध्वनि का महत्त्व भी अलंकार, रीति, गुण आदि से भिन्न है और वह काव्य के वास्तविक लालित्य का बोधक है जिसके कारण उसमें अपूर्व दीप्ति सामविष्ट हो जाती है उसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक चारु होता है। इस प्रकार का काव्य केवल काव्यमर्मज्ञों या सहृदयों को ही वेद्य होता है। काव्य ललित और उचित सन्निवेश से चारु रचना को कहते हैं।[8] आनन्दवर्धन ने प्रीति और आनन्द को ही काव्य का परम प्रयोजन सिद्ध किया।[9] उनके अनुसार रस सृष्टि ही काव्य का एकमात्र उद्देश्य है। वे आनन्द को काव्य का मूल प्रयोजन मानकर उसके शुद्ध और गम्भीर मूल्यों को प्रतिष्ठित करते हैं।

ध्वनिकार के अनुसार रसानुभूति अखण्ड आनन्दमयी चेतना है, जिनमें नैतिक तत्त्वों का स्वतः समावेश हो जाता है। इस प्रकार आनन्दवर्धन ने आनन्दवादी और आचारवादी (मंगलवादी) मूल्यों में समन्वय स्थापित कर दोनों में उपकार्य– उपकारक भाव की सिद्धि की। इस प्रकार रस की आनन्दमयी अखण्ड चेतना में नैतिक विवेक की अनिवार्यता सर्वत्र सिद्ध हुई। यह तत्त्व ध्वनि को लोकमंगल या लोकोपयोगिता से जोड़ता है।[10]

मम्मट के अनुसार ध्वनि–सिद्धान्त की सौन्दर्य–भावना व्यंग्यार्थ ही है। जिसका सहृदयश्लाघ्य होना अनिवार्य है। व्यंजना (भावना एवं कल्पना की दीप्ति) वस्तुतः सौन्दर्यपूर्ण या चारु अभिव्यंजना का ही नाम है, जिसके कारण काव्य में विशेष प्रकार की चारुता या अशेष सौन्दर्य का विनियोग होता है। सौन्दर्यानुभूति को काव्यात्मतत्त्व के रुप में स्वीकार कर उससे विशिष्टि व्यंग्य को ही काव्य का अविनश्वर तत्त्व माना गया है। सौन्दर्य प्रतीति या लालित्य बोध केवल व्यंजना से ही सम्भव होने के कारण इसको काव्य का प्रमुख या सर्वोच्च सौन्दर्योपकरण के रुप में माना जाता है। यही नहीं आचार्य मम्मट ने रस को आनन्दमय या सौन्दर्यपूर्ण मानकर उसके आस्वादन को सभी प्रकार के ज्ञान से विगलित सिद्ध किया है। काव्य प्रयोजन के प्रसंग में उन्होंने सभी प्रयोजनों का प्रयोजन आनन्द या आनन्दानुभूति को मानकर उसकी सिद्धि रसचर्वणा द्वारा स्वीकार करते हैं।[11] कहने का अभिप्राय यह है कि रसानुभूति आनन्दानुभूति का नाम है, और यही काव्य के सर्वोच्च लक्ष्य या ध्येय के रुप में मान्य है। अर्थात रस की प्रतीति आनन्दानुभूति की बोधिका है। साहित्यदपर्ण में आचार्य विश्वनाथ ने उद्घृत किया है।

''रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्युनुभूयते[12] रचनाकार द्वारा प्रस्तुत किये गये चमत्कार को ही सौन्दर्य कहा गया है। आचार्य विश्वनाथ ''साहित्यदपर्ण'' में सौन्दर्य से प्राप्य रसानुभूति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि रस सत्त्व के उद्रेक से अभिव्यक्त होता है।[13] जो स्वरुप से अखण्ड स्वयं प्रकाश आनन्द और चिन्मय है, जो अन्य वेद्यों के स्पर्श से मुक्त है, जो ब्रहम के आस्वाद के समान है। जिसका प्राण अलौकिक चमत्कार है। वह आत्मस्वरुप के तादात्म्य के रुप में आस्वाद्यमान होता है। इस प्रकार विश्वनाथ ने रस की आनन्दमयता को स्वीकृत कर उसे आनन्दबोध स्वरुप माना तथा अभिनवगुप्त के शैवाद्वैत के स्थान पर अद्वैतवाद या वेदान्त सम्मत दार्शनिक मान्यताओं को आधार प्रदान किया। विश्वनाथ ने रस युक्त वाक्य को काव्य कहकर काव्य के द्वारा आनन्द या सौन्दर्यतत्त्व की अभिव्यक्ति करते है। काव्य आनन्दबोध रुप है, सौन्दर्याभिव्यक्ति एवं मानवीय उच्चता का बोधक है। तात्पर्य यह है कि रस उच्चकोटि के लालित्य तत्त्व या सौन्दर्य बोध का साधक एवं उत्कृष्ट कोटि की नैतिकता से युक्त है। इस में सौन्दर्य एवं नीति दोनों का सम्यक् विनियोग किया गया है।

पण्डितराज जगन्नाथ ने पूर्ववर्ती आचार्यों विशेषतः मम्मट एवं विश्वनाथ द्वारा उद्भावित काव्य–लक्षणों का खण्डन करते हुए अपना स्वकाव्यलक्षण ''रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्''[14] कहकर चमत्कार को ही सौन्दर्य बताया है। रमणीयता का भाव है कि जो चित्त में एक लोकोत्तर आनन्द को उत्पन्न करे। पण्डितराजजगन्नाथ की रमणीयता की परिधि में काव्य का आन्तर तथा बाह्य चमत्कार (सौन्दर्य) समाविष्ट हो जाता है। पर पण्डितराजजगन्नाथ लोकोत्तरता से अलौकिकता का अर्थ न ग्रहण कर सहृदय को चमत्कृत करने वाले अर्थ से लेते हैं। यह अलौकिकता साधारण अलौकिकता तथा ब्रहमानन्दमयी अलौकिकता से सर्वथा भिन्न सहृदय को चमत्कृत करने वाली रमणीयता है। यहाँ सहृदयों के अनुभव से उत्पन्न चमत्कारत्व को रमणीयता कहा गया है।

पण्डितराजजगन्नाथ का रमणीयार्थ व्यंग्यार्थ से भिन्न नहीं है। वे प्रकारान्तर से रस को ही काव्यात्मभूततत्त्व के रुप में स्वीकार कर रस ध्वनि को ही अलौकिक आनन्द या रमणीयार्थ का प्रतिपादक मानते है। व्यंजना में ही रमणीय अर्थ को व्यक्त करने की अद्भुत शक्ति है और यदि उसका बार–बार अनुसन्धान किया जाय तो उससे अनेक प्रकार की रमणीयता (सुन्दरता) की प्राप्ति होगी। रमणीयता लालित्य के अशेष आनन्द को द्योतित करती है। पण्डितराजजगन्नाथ ने अनुभूति प्रेरित कल्पना को रमणीयता कहा है।

पण्डितराजजगन्नाथ का रस निरुपण वेदान्तदर्शन की दार्शनिक पीठिका पर अधिष्ठित है। उन्होंने रस विषयक दार्शनिक चिन्तना को वैदिक मंत्र पर संस्थापित कर उसे आनन्दस्वरुप सिद्ध किया, उसकी सम्पुष्टि के लिये ''रसो वै सः'' कहा है। रस आनन्दस्वरुप है जिसकी सम्पुष्टि सहृदयानुभूति से ही है।[15] यह निर्विवाद सिद्ध है कि रस रमणीय पदार्थ है, एक सौन्दर्यमय वस्तु है और इससे परमाह्लाद या परमानन्द का बोध हुए बिना नहीं रहता।[16]

इस प्रकार संस्कृत काव्यशास्त्र के सभी सम्प्रदाय अपनी गरिमा और महनीयता को स्थापित करते हुए उसे ही काव्यात्मतत्त्व के रुप में प्रस्तुत करते हैं। उनका उद्देश्य काव्य–सौन्दर्य के समस्त उपादानों का अन्वेषण रहा है। सौन्दर्य के आस्वाद में निहित आनन्दानुभूति के संदर्भ में यह कहना युक्तियुक्त ही है कि जिनके पास दृष्टि है, अर्थात जो सहृदय प्राणी है, वही सौन्दर्य को कसौटी पर परखने में सक्षम है। इतरेतर सामान्य प्राणी नहीं। इस प्रकार सौन्दर्य अनुभवैकगम्य है। वस्तुतः कला एवं साहित्य का उपनिषद सौन्दर्य है। इसी से कला और साहित्य दोनों सरस और सार्थक होते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. टॉलस्टाय, ह्वाट इज आर्ट, लंदन 1946 पृ0– 123
2. समीक्षाशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, काशी– सं0 2010, पृ0 206
3. इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे
   विन्देम देवतां वाचममृतामात्मानः कलाम्। उत्तरामचरितम् प्रथम अंक, प्रथम श्लोक
4. कुमारसंभव, पंचम सर्ग, प्रथम श्लोक।
5. साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद पृष्ठ सं0– 19
6. योऽर्थः सहृदयश्लाध्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः। ध्वन्यालोक – प्रथम उद्योत कारिका 2,
   वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।।
7. प्रतीयमान पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
   यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।। ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत, कारिका 4,
8. ''काव्यस्य हि ललितोचितसन्निवेशचारुणः''– ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत, पृष्ठ सं0 67
9. तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरुपम्– ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत, कारिका प्रथम

10. ध्वन्योलक – 3/14, 4/5

11. काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेयुजे ।।
''काव्य का प्रधान लक्ष्य ''सद्यः परिनिर्वृत्ति
अर्थात् अपूर्व आनन्दानुभूति या रसास्वादन है।''–काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास कारिका–2

12. साहित्यदर्पण – तृतीय परिच्छेद पृ0–49

13 सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वाप्रकाशानन्दचिन्मयः।
वेधान्तरस्पर्शशून्यों ब्रहमास्वादसहोदरः।। साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, कारिका 2,

14. रसगंगाधर – प्रथमानन, (1)

15. रसो वै सः, रसं ह्यो वायं लब्ध्वानन्दी भवति। इत्यादि श्रुतिः, सकलसहृदयप्रत्यक्षं चेति प्रमाणद्वयम्।।
रसगंगाधर, पृ0 – 28 (निर्णयसागरप्रेस)

16. ''परमाह्लादाविनाभावितया प्रतीयमानः प्रपञ्चेऽस्मिन्नसो
रमणीयतामावहतीति निर्विवादम्''। रसगंगाधर, (पृ0 35, निर्णयसागर प्रेस)